Vol.11 December'17 No.5
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

# ब्रह्मार्पण
# BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

## स्वामी श्रद्धानन्द विशेषांक

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

# इरादों के धनी आर्य नेता

*–वेदप्रकाश शर्मा धारीवाल*

स्वामी श्रद्धानन्द, गुरुदत्त, पंडित लेखराम।
धर्म–मर्यादा को ऊँचा कर गए दुनिया में नाम।
जान पर खेले सुनाने को दयानन्द का पैगाम।
प्रेरणा के साँचे में ढलता रहेगा उनका काम।।

शिक्षा क्षेत्र में मचाने धूम आए हंसराज।
लगन परिश्रम से बचाई आर्य जाति की लाज।
होश में आया जमाना बदले सब खोटे रिवाज।
दे दिया जीवन किसी ढंग से सुधर जाए समाज।

सत्य मार्ग पर रहे चलते महाशय राजपाल।
सामना आकर कोई करता यह थी किसकी मजाल।
अपने जीवन की सच्चाई का रहा हर दम ख्याल।
प्राण देकर कर गए हल धर्म–संकट का सवाल।।

महर्षि के प्यारे थे ऐसे इरादे के धनी।
वेद के प्रचार में कोई कमी आने न दी।
उनके दम से मिल गई मुर्दादिलों को जिन्दगी।
फिर अंधेरों में दुःखी आँखों ने देखी रोशनी।।

*103, अंकुर बी, हालर,*
*वलसाड–396001 (गुजरात)*

## शोक संदेश

बड़े खेद से सूचित करना पड़ रहा है कि वानप्रस्थ साधक आश्रम (रोजड़–गुजरात) के अधिष्ठाता, वैदिक प्रवक्ता एवं विद्वान् श्री ज्ञानेश्वर आर्य का 13 नवम्बर रात्रि 1:00 बजे आकस्मिक निधन हो गया। वे देश–विदेशों में वेदों के प्रचार कार्य में संलग्न थे। वे आरंभ से ब्रह्मार्पण के परामर्शदाता रहे थे। उनके निधन से आर्यजगत की जो क्षति हुई है वह अपूरणीय हैं। प्रभु से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करें और हमें इस कष्ट को सहने की शक्ति दें।

Brahmarpan December'17 Vol. 11 No.5
मार्गशीर्ष-पौष 2074 वि.संवत्

# ब्रह्मार्पण
# BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

**BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION**

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Website : www.thearyasamaj.org
of Delhi Arya Pratinidhi Sabha

Sh. B.D. Ukhul
*Secretary*
Dr. B.B. Vidyalankar 0124-4948597
*President*
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
*V.President*
Dr. Mahendra Gupta *V.President*
Ms. Deepti Malhotra
*Treasurer*
**Editorial Board**
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

***Printed & Published by***
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
**Price : Rs. 10.00 per copy**
**Annual Subscription : Rs. 100.00**

## *CONTENTS*

1. इरादों के धनी आर्य नेता 2
*–वेदप्रकाश शर्मा धारीवाल*
2. संपादकीय 4
3. सांख्य दर्शन 7
*–डॉ. भारत भूषण*
4. कल्याण मार्ग के पथिक– स्वामी श्रद्धानन्द 8
*–डॉ. भवानी लाल भारतीय*
5. स्वामी श्रद्धानन्द एक अद्भुत व्यक्तित्व 14
*–सहदेव वर्मा*
6. लो सीना खुला है हिम्मत हो तो गोली चला दो (चाँदनी चौक की लोमहर्षक घटना) 20
*–मनुदेव 'अभय'*
7. बच्चों के चाचा नेहरु 24
8. वेद धर्म रक्षार्थ प्रथम बलिदानी कुमारिल भट्ट 28
*–डॉ. अशोक आर्य*
9. Nehru's principles made Partition unavoidable (Jinnah turned from Secularism to religion) 32
*-Nisid Hajari*
10. They (Gandhi & Ambedkar) were Rivals, But with the same Mission
*-Rama Chandra Guja* 34

# संपादकीय

## महान स्वतंत्रता सेनानी और राष्ट्र निर्माता सरदार पटेल

*-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार*

सरदार वल्लभ भाई पटेल एक निर्भीक, राष्ट्रवादी, देशभक्त थे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश का प्रधानमंत्री कौन बने इस जटिल प्रश्न के समाधान के लिए कांग्रेस के बहुमत ने सरदार पटेल के पक्ष में मत दिया। परन्तु महात्मा गाँधी पं. जवाहरलाल नेहरु के पक्ष में थे, अतः कांग्रेस को गाँधी जी की बात माननी पड़ी। सरदार पटेल गाँधी जी का बहुत आदर करते थे। उन्होंने गाँधी जी की आज्ञा को मानते हुए देश के उप-प्रधानमंत्री और गृहमंत्री के पदों को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

गृहमंत्री के रूप में उनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य 564 देशी रियासतों को संघ में मिलाकर देश के एकीकरण का था। यह उनकी राजनीतिक कुशलता और नीतिमत्ता का परिचायक है। रियासतों को भारत में मिलाने में चार ऐसी रियासतें थीं जो जिन्ना और अन्य मुस्लिम नेताओं के प्रभाव से अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखना चाहती थीं। ये रियासतें थी जम्मू और काश्मीर, हैदराबाद, भोपाल तथा त्रावनकोर। इन रियासतों की अपनी-अपनी समस्याएँ थीं। हैदराबाद का निजाम मुसलमान था। परन्तु वहाँ की अधिकांश आबादी हिन्दू थी। काश्मीर का महाराजा हिन्दू था परन्तु राज्य की जनता अधिकांश मुसलमान थी। भोपाल का नवाब मुसलमान था। परन्तु वहाँ की प्रजा अधिकांश हिन्दू थी और यह देश के मध्य में स्थित है। त्रावनकोर का राजा स्वतंत्र रहना चाहता था।

पटेल ने साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति अपना कर सबका देश के साथ एकीकरण कर लिया। पटेल को रियासतों के एकीकरण के कारण भारत का बिस्मार्क कहते हैं। 19वीं शताब्दी में जर्मनी भी कई राज्यों में बँटा हुआ था बिस्मार्क ने जिन्हें जोड़ने का काम किया था।

इन रियासतों में जम्मू-काश्मीर ऐसी रियासत है जो देश के

लिए सिरदर्द बनी हुई है। नेहरु ने स्वयं काश्मीरी होने के कारण इसका दायित्व अपने पास रखा। यानी इसे पटेल के कार्यक्षेत्र से बाहर रखा। उधर काश्मीर के महाराजा हरिसिंह द्वारा भारत में विलय के बाद पाकिस्तान की सेना और कबाइलियों ने काश्मीर पर आक्रमण कर दिया। उसकी सेना श्रीनगर की ओर बढ़ रही थी ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? इस पर विचार के लिए माउंट बेटन की अध्यक्षता में मीटिंग बुलाई गई। इसमें तेजी से काश्मीर में सैनिक सहायता भेजने पर चर्चा हो रही थी। कमांडर बुशर ने कहा कि हमारे पास सैन्य-सामग्री इतनी नहीं है कि हम कुछ करें। माउंटबेटन ने भी असमर्थता प्रकट की। पं. नेहरु गहरी चिन्ता में थे। सरदार चुप बैठे रहे। मीटिंग में निराशा और लाचारी का वातावरण था। यह देख सरदार उठे और उन्होंने दृढ़ आवाज़ में कहा, "कमांडर साहब, साधन-सामग्री हो या न हो, हमें काश्मीर की रक्षा करनी है। उन्होंने पं. नेहरु से पूछा, "जवाहरलाल, आपको काश्मीर चाहिए या नहीं?" नेहरु बोले "क्यों नहीं मुझे काश्मीर चाहिए।" तब पटेल ने कहा तो फिर आदेश दें। नेहरु का उत्तर सुने बिना ही पटेल ने मानेक शॉ से कहा, आपको आदेश मिल गया। और इसके बाद भारतीय सेनाओं को पाकिस्तानी सेनाओं को खदेड़ने के लिए विमानों द्वारा काश्मीर रवाना कर दिया।

**जब तिब्बत खो दिया** :- जब चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई ने तिब्बत को चीन का अंग मान लेने के लिए नेहरू को पत्र लिखा तब पटेल ने बहुत दृढ़ता के साथ नेहरू को इसे न मानने का अनुरोध किया। उस समय यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी। नेहरु ने पटेल के अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया और चीन ने हमारी 40 हजार वर्ग किमी. भूमि पर कब्जा कर लिया। इससे सैकड़ों तिब्बतियों को वहाँ से भाग कर भारत में शरण लेनी पड़ी। इन्ही में तिब्बत के धर्मगुरु दलाईलामा भी थे। काश्मीर के बाद हैदराबाद के विलय की समस्या भी विकट थी। हैदराबार का निजाम विश्वभर में सबसे अमीर व्यक्ति था। वह अपनी रियासत को स्वतंत्र रखना चाहता था। मंत्रिमंडल की बैठक में पटेल ने हैदराबाद के विलय के लिए

नेहरु को सैनिक कार्रवाई का सुझाव दिया जिसे नेहरु ने सिरे से अस्वीकार कर दिया और कहा कि तुम तो पूरे सम्प्रदायवादी हो। मैं तुम्हारे किसी भी सुझाव या प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता। इस तरह नेहरू ने सबके सामने पटेल को अपमानित किया। इससे पटेल स्तब्ध रह गए और तत्काल अपने कागजात उठाकर कैबिनेट की बैठक कक्ष से बाहर चले गए। इसके बाद पटेल ने किसी भी कैबिनेट की बैठक में भाग नहीं लिया। पटेल ने 13 सितम्बर 1948 को हैदराबाद को निजाम के शासन से मुक्त कराने के लिए सैन्य कार्रवाई की और 18 सितंबर को इसे आजाद करा लिया। नेहरु इस मामले को भी सुरक्षा परिषद में ले जाना चाहते थे। 15 दिसम्बर 1950 को मुंबई में सरदार पटेल की मृत्यु की खबर सुनते ही नेहरु की प्रतिक्रिया बहुत ही अपमानजनक थी। नेहरु ने मंत्रालय **को दो नोट भिजवाए।** एक नोट में उन्होंने पटेल के आवास से तत्काल उनके द्वारा प्रयुक्त कार को कार्यालय लाने का आदेश दिया और दूसरे नोट में नेहरु ने सरकारी अधिकारियों को पटेल की अन्त्येष्टि में मुंबई जाने से रोका था। इसका विस्तृत विवरण उनके सचिव वी.पी. मेनन की पुस्तक में देखा जा सकता है।

सरदार पटेल ने अपने जीवन के अन्तिम सार्वजनिक कार्यक्रम में दिल्ली में महर्षि दयानन्द बलिदान दिवस में भाग लिया और ऋषि दयानन्द के प्रति अपनी मार्मिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि ऋषि दयानन्द ने इस देश की जनता के अन्दर जो आत्महीनता का भाव भर गया था, उसे दूर किया और उसे गर्व से खड़ा होना सिखाया। पटेल ने अपने भाषण में हिन्दुओं को बल-पूर्वक, धोखे या छल से धर्म परिवर्तित कराने की चर्चा करते हुए कहा, स्वामी दयानन्द ने अपने प्रचार के द्वारा हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन पर न केवल अंकुश लगाया अपितु विधर्मी बने हिन्दुओं को अपने धर्म में लौटाने का मार्ग प्रशस्त किया। हैदराबाद पर चर्चा करते हुए पटेल ने कहा आर्यसमाज के आन्दोलन ने बहुत पहले ही हमारे कार्य को बहुत आसान कर दिया था।

**संपादक**

# सांख्य दर्शन (अध्याय-1, सूत्र-119)

*-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार*

यदि आत्मा को एक नहीं माना जाता तो आत्मा की एकता का प्रतिपादित करने वाले वेद वाक्यों के साथ इसका विरोध होगा। इसका समाधान सूत्रकार अगले सूत्र में करते हैं, सूत्र है-

**नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात्।।119।।**

अर्थ- (अद्वैतश्रुतिविरोधः) अद्वैत प्रतिपादित श्रुतियों के साथ विरोध (न) नहीं है (जातिपरत्वात्) जातिपरक होने से।

भावार्थ-आत्मा को अनेक मानने पर आत्मा की एकता का प्रतिपादन करने वाले वेदवाक्यों के साथ सांख्य सिद्धान्त का कोई विरोध नहीं है, क्योंकि आत्मा की एकता का प्रतिपादन, उसकी समान चेतना-रूपता का प्रतिपादन है। आत्मा चाहे जीवात्मा की वाचक हो या परमात्मा की, उसकी चेतनारूपता एक समान है। जैसे प्रकृति में मूल से ही विलक्षणता है। सत्व, रजस, तमस् मूल तत्त्व जड़ता में समान होने पर भी स्वरूप में परस्पर भिन्न हैं। जैसे आत्माओं में चैतन्य स्वरूप के आधार पर किसी प्रकार की विलक्षणता नहीं है। इस प्रकार चैतन्य रूप की एकता का प्रतिपादन करने की भावना से वेद में जहाँ-तहाँ आत्मा का एकत्व प्रतिपादित किया गया है। उसका अभिप्राय आत्मा की व्यक्तिगत एकता के प्रतिपादन में कदापि नहीं है। यदि कहीं एकता का प्रतिपादन है भी तो वह केवल परमात्मा के संदर्भ में है। इसके अतिरिक्त आत्मा की अनेकता का वेद में बहुत स्थानों पर वर्णन पाया जाता है, जैसे-

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" (ऋ. 1/14/20 तथा 1/164/38-39 ; 6/15/8) और (यजु. 40/8) आदि में अनेक ऋचा इस विषय की उपलब्ध होती हैं। इससे स्पष्ट है कि आत्मा अनेक हैं।।।119।।

*दी हिबिस्कस,*
*बिल्डिंग-5, एपार्ट नं.-9बी*
*सेक्टर-50, गुड़गाँव (हरियाणा) 122009*
*फोन-0124-4948597*

# कल्याण मार्ग के पथिक-स्वामी श्रद्धानन्द

*डॉ. भवानीलाल भारतीय*

अपनी आत्मकथा में स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वयं को 'कल्याण मार्ग का पथिक' बताया था। सचमुच इनकी जीवन कथा अधःपतन के गहर गड्ढे से निकल कर अपने जीवन को धर्म, समाज और देश के लिए बलिदान करने की ज्वलन्त कहानी है। अपने किशोर और युवाकाल में कतिपय परिस्थितियों के कारण वे अपने मार्ग से भटके तो सही, किन्तु अपनी त्रुटियों तथा कमियों पर निरन्तर विजय पाने की चेष्टा भी निरन्तर चलती रही और अन्ततः वह श्रेय के मार्ग पर चलने की पात्रता अर्जित कर सके। उनके जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन तो तब आया जब 1879 में उन्हें ऋषि दयानन्द के तेजस्वी एवं गरिमामय व्यक्तित्व के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। उन्होंने स्वीकार किया है कि तब उन्हें अपने अनीश्वरवादी होने का बड़ा गर्व था। यूरोप के तत्त्वविदों तथा दार्शनिकों के अध्ययन ने ईश्वर के प्रति उनके विश्वास को दोलायमान कर दिया था, किन्तु महान् आस्तिक महर्षि से वार्तालाप एवं शंका समाधान ने उनके हृदय में व्याप्त संशय तथा भ्रम को नष्ट कर दिया। ऋषि के मुख से उन्होंने उपनिषद् का निम्न मंत्र सुना-

**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।**
**यमेवैष वृणुते तेनलभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।**

परमात्मा की प्राप्ति, भाव भरे प्रवचनों को सुनने से नहीं होती और न बहुश्रुत होने या तीव्र मेधा को प्राप्त करने से। परमात्मा तो जिसे अपने भक्त के रूप में वरण कर लेता है उसी के समक्ष अपने स्वरूप का प्रकाशन करता है। यही वह आर्ष वाणी थी जिसने युवक मुन्शीराम को आस्तिकता की डगर का राही बनाया था। जब तक मुन्शीराम ने स्वामी दयानन्द को निकट से नहीं देखा और न जाना तब तक तो भारत के संन्यासी वर्ग के प्रति उनकी धारणा यही थी कि ये भिक्षोपजीवी लोग समाज पर भार के तुल्य हैं।

दयानन्द के इस सम्पर्क ने उनके जीवन को श्रेयोन्मुख कर दिया। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने वकालत का पेशा

अपनाया किन्तु धर्म और समाज की सेवा ही उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य रहा। जिन नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों में उनकी आस्था रही, उन्हें स्वयं के जीवन में क्रियान्वित करने तथा अन्यों को अपनाने की प्रेरणा देने में वे सदा तत्पर रहे। इसी प्रकार जिन विचारों और कार्यक्रमों को वे महत्त्वहीन समझते रहे, उन्हें त्यागने में कोई संकोच नहीं किया। लाहौर में रहते समय वे आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज के प्रति समान रूप से आकर्षित हुए थे, किन्तु जब सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने उन्हें पुनर्जन्म के प्रति पूर्ण विश्वासी बना दिया, वे आर्यसमाज के प्रति समर्पित होकर वैदिक धर्म के अनन्य प्रचारक बन गए। श्रद्धानन्द का सार्वजनिक जीवन निरन्तर विकसित होता रहा किन्तु उसकी धुरी आर्य समाज ही रही। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में उन्होंने आर्यसमाज के माध्यम से धर्म जागृति फैलाई। लाहौर और जालंधर दोनों उनके कर्मस्थल रहे जहाँ से उन्होंने वैदिक ज्ञान को प्रसारित किया। अपने प्रवचनों और शास्त्रार्थों के द्वारा उन्होंने पंजाब की जनता तक वेदों की कल्याणकारी विचारधारा को फैलाया। लाहौर में रह कर वे आर्यसमाज के गौरवशाली नेता बने और उन्होंने अनेक चुनौती भरे प्रश्नों का समाधान किया। जब मांसाहार के निषेध तथा पश्चात्य शिक्षा को महत्त्व न देने का सवाल उठा तो उन्होंने अपने चारित्रिक बल, सिद्धान्त, निष्ठा तथा वैदिक धर्म के प्रति अनन्य प्रेम के कारण कठिनाइयों पर विजय पाई।

जिस समय वकील लाला मुन्शीराम ने लाहौर आर्य-समाज की सदस्यता का फार्म भरा था, उसी समय वयोवृद्ध लाला साँईदास ने भविष्यवाणी करते हुए कहा था- **"आज एक नई शक्ति का प्रवेश आर्यसमाज में हुआ है। यह तो भविष्य ही बताएगा कि यह आर्यसमाज को तारेगी या डुबाएगी।"** श्रद्धानन्द चरित का अनुशीलन करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि उन्होंने दयानन्द की शिक्षाओं को फैलाने में अपने सम्पूर्ण जीवन की आहुति दे दी थी। आज आर्यसमाज के सवा सौ वर्ष के इतिहास में दयानन्द के पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द के तुल्य कोई ऐसी हस्ती दिखाई नहीं देती जिसने धर्म, समाज तथा राष्ट्र की सेवा में स्वयं को सम्पूर्ण रूप

से समर्पित किया हो।

भारत की शिक्षा प्रणाली में प्राचीन मूल्यों का प्रवेश कराना तथा छात्र वर्ग में चरित्र, नैतिकता, धर्म-प्रेम, त्याग और बलिदान के भावों को जगाने के लिए उन्होंने 1902 में गंगा के तट पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की जिसने कालान्तर में विश्वविद्यालय का रूप लिया। यह तो सभी मानते हैं कि पुरातन शिक्षा प्रणाली के पुनरुद्धार का श्रेय स्वामी श्रद्धानन्द को ही है। उन्होंने इस संस्था की स्थापना कर उस प्राचीन गुरुकुल प्रणाली को पुनरुज्जीवित किया जिसका उल्लेख वैदिक एवं आर्ष ग्रन्थों में मिलता है। किन्तु गुरुकुल में साहित्य के साथ-साथ इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान के अतिरिक्त भौतिकी, रसायन, गणित तथा प्राणी विज्ञान जैसे प्राकृतिक विज्ञानों की भी शिक्षा दी जाती थी। गुरुकुल शिक्षा की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। राष्ट्रभाषा के माध्यम से विद्योपार्जन कराना। जिस युग में विज्ञान के विषयों को हिन्दी के माध्यम से पढ़ाना असम्भव समझा जाता था, उस समय स्नातक स्तर तक की विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकें तैयार करवाना सचमुच बड़ी बात थी। गुरुकुल ने यही कर दिखाया। गुरुकुल कांगड़ी को निकट से देखकर भारत भक्त सी. एफ. एण्ड्रूज तथा कालांतर में इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री रेमजे मैकडानल्ड को आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हुई तो स्वयं महात्मा गाँधी अपने दक्षिण अफ्रीका के कार्यक्रम को पूरा कर भारत आये तो उन्होंने अपना पहला प्रोग्राम हरिद्वार आकर गुरुकुल को देखने तथा उस महात्मा मुन्शीराम के दर्शन करने का बनाया जिनके देशभक्त शिष्यों ने अपने नाश्ते के व्यय में कमी करके दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के लिए चंदा एकत्र किया था।

गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य के पद पर पर्याप्त समय तक रहने के पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द ने अनुभव किया कि अब इस विद्यालय की प्राचीरों से बाहर निकल कर देश की स्वाधीनता के संग्राम में भाग लेना चाहिए। यों तो वे राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में बहुत पहले से ही जाने लगे थे किन्तु दक्षिण अफ्रीका से कर्मवीर बैरिस्टर मोहन दास

कर्मचन्द गाँधी को सर्वप्रथम 'महात्मा' कह कर उन्होंने ही पुकारा था, और गुरुकुल के प्रांगण में इस महापुरुष का भावभीना स्वागत कर उसे अभिनन्दन-पत्र भेंट किया था। स्वामी श्रद्धानन्द ने समझ लिया था कि देश के लिए कुछ करने का समय अब आ गया है। 1917 से 1922 तक के पाँच वर्ष उन्होंने राष्ट्र की सेवा में समर्पित किए। यही वह समय था जब दिल्ली के चाँदनी चौक में उन्होंने गोरे सिपाहियों की संगीनों के सामने अपनी छाती खोल दी थी और निर्भीक स्वर में कहा था कि भारत की जनता पर गोली चलाने से पहले उन्हें इस संन्यासी की छाती को छलनी बनाना होगा। असहयोग और सत्याग्रह का यही समय था जब दिल्ली के राष्ट्रभक्त मुसलमान उन्हें जुम्मे की नमाज के समय जामा मस्जिद में ले गए और उस धर्म स्थान की सर्वोच्च वेदी पर बैठ कर उन्होंने निखिल प्राणी जगत् के माता और पिता परमेश्वर की स्तुति इस मंत्र से की थी-

**त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।**
**अधा ते सुम्नमीमहे।।**

इस वैदिक प्रार्थना के पश्चात् उन्होंने समस्त देशवासियों के परस्पर भ्रातृभाव में बँध कर स्वयं को देश के लिए बलिदान होने की प्रेरणा दी। राजनीति में धर्म और नैतिकता को समाविष्ट करने पर उन्होंने बल दिया क्योंकि उन्होंने ही सत्याग्रह को 'धर्म युद्ध' कहा था तथा जिन्हें अमृतसर कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष का पद स्वीकार करने के लिए अनुरोध करते समय महात्मा गाँधी ने लिखा था- **"यदि आप स्वागत समिति के सभापति हो जाएँगे तो आप काँग्रेस में धार्मिक भाव पैदा कर सकेंगे।"** जलियाँवाला हत्याकाण्ड के पश्चात् जब लोगों को पंजाब में काँग्रेस के अधिवेशन का होना असम्भव जान पड़ता था, उस समय अपनी कार्यक्षमता का परिचय देकर स्वामीजी ने उसे सफल कर दिखाया। राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए समर्पित स्वामी श्रद्धानंद ने अपना स्वागत भाषण हिन्दी में दिया। काँग्रेस के मंच से दिया गया यह पहला हिन्दी का स्वागत भाषण था। इससे पहले वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता कर चुके थे।

काँग्रेस के कार्यक्रमों में स्वदेशी का महत्त्व, नारी जागरण, गोसेवा, अछूतोद्धार, मदिरा का बहिष्कार तथा हिन्दी प्रचार जैसे रचनात्मक कार्य स्वामीजी की रुचि के थे। महात्मा गाँधी के असहयोग में उनकी कितनी प्रबल आस्था थी, यह हम उनके उस पत्र में देखते हैं जो उन्होंने 25 सितम्बर 1920 को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान लाला रामकृष्ण को लिखा था। इसमें उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया था कि इस समय में मेरी सम्मति में असहयोग की व्यवस्था के क्रियात्मक प्रचार पर ही मातृभूमि का भविष्य निर्भर है। यदि यह आन्दोलन असफल हुआ तो देश की स्वतंत्रता का प्रश्न पचास वर्ष पीछे जा पड़ेगा। यह जाति के जीवन और मृत्यु का प्रश्न हो गया है।" वे सर्वात्मना काँग्रेस में गए और गुरु का बाग सत्याग्रह में भाग लेकर कारागार की यातनाओं को भी सहा। किन्तु जब उन्होंने अनुभव किया कि काँग्रेस की मुस्लिम तुष्टिकरण नीति के शुभ परिणाम नहीं निकलेंगे तो उन्होंने इस संस्था से किनारा कर लिया। उन्हें प्रथम अनुभव तो तब हुआ जब काकीनाड़ा काँग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए मौलाना मोहम्मद अली ने अछूतों का सवाल खड़ा किया और सात करोड़ दलितों को हिन्दू और मुसलमानों में बराबर बाँट लेने की धृष्टतापूर्ण बात कही। इस पर स्वामीजी ने सिंह गर्जना करते हुए कहा– **"राम और कृष्ण की इन प्यारी सन्तानों को परस्पर बाँटने की बात कहना देश की एकता को क्षति पहुँचाना है और यह त्रिकाल में भी सम्भव नहीं है। "अछूत प्रथा को जन्म देने में निश्चय ही हिन्दू जाति से भयंकर भूलें हुई हैं किन्तु उसका प्रायश्चित भी हम ही करेंगे।"** इसके बाद उन्होंने कांग्रेस से अछूतोद्धार का कार्यक्रम अपनाने के लिए कहा।

अन्ततः वे काँग्रेस से दूर हट गए और लाला लाजपतराय तथा पं. मदनमोहन मालवीय जैसे हिन्दू हितैषी नेताओं के सहयोग से संगठन के कार्य को आरम्भ किया। अब उनकी धारणा बनी कि देश के हित तभी तक सुरक्षित हैं जब तक यहाँ के हिन्दुओं को गौरव और सम्मान का जीवन बिताने की

सुविधा मिलती है।

साथ ही उन्होंने हिन्दू नेताओं को अछूतों की समस्या का हल करने के लिए कहा। शताब्दियों से पीड़ित, त्रस्त तथा शोषित कथित अछूत जातियों के जीवन को उन्नत बनाना समय की पहली माँग थी। स्वामी श्रद्धानन्द ने अन्य मतों में गयों को पुनः आर्य धर्म में दीक्षित करने का कार्यक्रम बनाया और शुद्धि संस्कार का झण्डा उठाया। इस कार्य में उन्हें पं. मदनमोहन मालवीय जैसे उदार सनातन धर्मी नेताओं का भरपूर सहयोग मिला। किन्तु महात्मा गाँधी की सहानुभूति उन्हें नहीं मिल सकी। शुद्धि आंदोलन को बंद करने के लिए जब गाँधी जी ने उन्हें कहा तो स्वामीजी ने स्पष्ट कर दिया कि यदि मुसलमान तबलीग का अभियान बंद कर दें, तो वे भी शुद्धि से हाथ खींच लेंगे।

अन्ततः उन्होंने महाकवि रवीन्द्रनाथ की 'एकला चलो' की नीति अपनाई। अब वे अपने कार्यक्रमों के लिए आर्यसमाज के लोगों पर ही निर्भर हो चले और महात्मा हंसराज आदि आर्य नेताओं के सहयोग से शुद्धि और संगठन के कार्य में जुट गए। उन्होंने इन दोनों कार्यक्रमों को देशव्यापी बनाकर दिखा दिया कि ऋषि दयानन्द के अनुयायी धर्म और समाज की भलाई के लिए क्या कुछ कर सकते हैं? इसी शुद्धि के लिए उन्हें स्वयं का भी बलिदान करना पड़ा क्योंकि असगरी बेगम की शुद्धि को लेकर मतान्ध मुसलमान उनके शत्रु बन गए और एक हत्यारे अब्दुल रशीद ने 23 दिसम्बर 1926 को पिस्तौल की गोलियों के प्रहार से उन्हें अमर हुतात्मा बना दिया। कर्मयोगी श्रद्धानंद का जीवन जितना शानदार था, उनकी मृत्यु भी उतनी ही गौरवशालिनी थी जिस पर महात्मा गाँधी को भी ईर्ष्या करनी पड़ी। पं. जवाहरलाल नेहरु ने उन्हें निर्भीकता और साहस की प्रतिमा बताया। उनके बलिदान के नब्बे से भी अधिक वर्ष बीत जाने पर भी स्वामी श्रद्धानन्द के गरिमामय जीवन तथा त्यागपूर्ण आदर्शों की चमक थोड़ी सी फीकी नहीं हुई है।

***नन्दन वन, जोधपुर***

# स्वामी श्रद्धानन्द एक अद्भुत व्यक्तित्व

*–सहदेव वर्मा*

**विपदिधैर्यमथाभ्युदयेक्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।**
**यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।**

अमर हुतात्मा, वीत राग अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन का यह श्लोक साक्षात् दर्पण है। आज के तथाकथित नेता हिन्दू-मुस्लिम एकता का राग मात्र ओछी राजनीति तथा गद्दी हथियाने के लिए करते हैं। वे भूल जाते हैं कि सन् 1920-21 में दिल्ली की गली में एक ही नारा था- 'यह श्रद्धानंद की दिल्ली है, यह अजमल खाँ की दिल्ली है।' स्वामी जी मात्र प्राचीन अपरा-परा विद्या के ही समर्थक नहीं थे, वरन् आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के भी प्रबल समर्थक थे। श्री एन्ड्रूज जब शान्ति निकेतन से गुरुकुल में आकर स्वामी जी से मिले तो उन्होंने रवीन्द्र बाबू के काव्य कानन में किलकने वाले छात्रों की चर्चा की। तब म. मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने कहा था- 'गुरुदेव के आश्रम में विद्यार्थी कविता गाते हैं, परन्तु गुरुकुल में विद्यार्थी कविता जीते हैं।' सन् 1915 ई. में गाँधी जी बिना किसी पूर्व सूचना के अचानक गुरुकुल पधारे थे। तब तक गाँधी जी को भारत में इने गिने लोग ही जानते थे, परन्तु मं. मुंशीरामजी उनके कार्यों से परिचित थे। 8 अप्रैल 1915 को गुरुकुल में उनका विशेष अभिनन्दन किया गया। उस समय गाँधी जी ने म. मुंशीरामजी के चरण स्पर्श करके उन्हें नमस्कार किया था। यह स्मरणीय है कि आज गाँधी जी जिस महात्मा शब्द से विश्वविख्यात हैं इसका प्रयोग सर्वप्रथम इसी अभिनन्दन-पत्र में किया गया था। गाँधी जी से बहुत पहले स्वतंत्रता तथा स्वदेशी की भावना, अछूतोद्धार का कार्य, राष्ट्रभाषा प्रेम का विचार सर्वप्रथम आर्य समाज ने ही प्रतिपादित किया था। तब तक न तो भारतीय काँग्रेस का जन्म हुआ था, न गाँधी जी का कार्यक्रम चला था।

1915 में गुरुकुल में ही गाँधी जी ने कहा था - "मैं महात्मा जी का बन्दा बनकर यहाँ आया हूँ। आर्यों ने स्वार्थ त्याग शिक्षा और भारत के हित में जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं, मैंने गत चौदह वर्षों से उन्हें देखा है। अतः मैं इनका सत्संग करना

चाहता हूँ।

जिस समय रॉलट एक्ट लागू किया गया तब मौखिक रूप से उसका विरोध करने वाले तो अनेक नेता थे, पर संगीनी बन्दूकों से लैस ब्रिटिश सेना के सामने सीना तान कर छाती पर संगीनों का वार और गोलियों की बौछार झेलने के लिए कुर्ते के बटन खोल कर बेखौफ हो सेना को चुनौती देने वाला तो केवल एक ही नर सिंह था - "श्रद्धानन्द"।

रॉलेट एक्ट के विरोध की बयार बही तो विशाल जलूसों और भारी प्रदर्शनों का दौर चला। उस समय की हिन्दू-मुस्लिम एकता का अपूर्व दृश्य देखते ही बनता था। 31 मार्च 1919 को लगभग 50 हजार लोगों ने शोक मनाते हुए उन मुस्लिम शहीदों का जनाजा निकाला जो पहले दिन शहीद हो गये थे। उस दिन दिल्ली के समस्त मुस्लिम समाज ने "एक स्वर से मुस्लिम शहीदों के तर्पण के लिए स्वामी श्रद्धानन्द को ही आमंत्रित किया।" जामा-मस्जिद के मुख्य इमाम ने उनका हार्दिक स्वागत करते हुए निवेदन किया कि आप मस्जिद की पवित्र वेदी से शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित कीजिए। आर्य संन्यासी ने वेद मंत्र से शुरु कर ओम् शांति पर अपना प्रेम भाईचारा तथा देशभक्ति का संदेश प्रसारित करते हुए शहीदों को सादर श्रद्धांजलि अर्पित की।

अभी रॉलट एक्ट का घाव हरा ही था कि बैशाखी के पवित्र पर्व पर उत्सव मनाते हुए एक मदान्ध सैनिक अधिकारी जनरल डायर ने जलियाँ वाले बाग में अन्धा-धुन्ध मशीनगन से निरापराध नागरिकों पर गोलियों की बौछार कर दी। सैकड़ों लोग मारे गये, हजारों घायल और अपंग हो गये। जब जनरल से पूछा गया कि क्या बिना गोली चलाये काम नहीं चल सकता था? उसने बड़ी बेशर्मी से जवाब दियाः-

'हाँ-मैं उस भीड़ को बिना गोली चलाये भी तितर-बितर कर सकता था।' फिर आपने गोलियाँ क्यों चलाई? 'तब सब लोग मेरा मजाक उड़ाते और मुझे बेवकूफ समझते।' वाह! क्या जवाब है। चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए।

एक तरफ गली-गली में फौज आम जनता को बूटों से रौंद रही थी। उधर काँग्रेस के भावी अधिवेशन पर संकट के बादल

घुमड़ रहे थे। ऐसी उथल-पुथल अराजकता तथा भय के वातावरण में निर्धारित अधिवेशन भला कैसे संभव था? पर स्वामी श्रद्धानन्द तो ऐसे विपरीत अवसरों का सामना करने को ही जीवन की कसौटी मानते थे। देश का कोई भी नेता कराची से कलकत्ता और कश्मीर से कन्या-कुमारी तक वहाँ अधिवेशन के पक्ष में नहीं था परन्तु आर्य संन्यासी ने हठ पकड़ ली-अधिवेशन होगा और अमृतसर में ही होगा। भले ही मशीनगनों और बन्दूकों की गड़गड़ाहट हो। तब नेताओं ने विशेष रूप से कहा- 'आप दूसरे नेताओं तथा दूसरे प्रदेशों से किसी भी प्रकार की सहायता व सहयोग की आशा न करें - जो करना है अपने बूते पर करें।

ऐसी विषम परिस्थिति में आत्मविश्वास के धनी और ईश्वर विश्वासी संन्यासी ने उस चुनौती को स्वीकार किया। जब कोई स्वागताध्यक्ष भी बनने को तैयार न हुआ तो गाँधी जी की सलाह पर उन्होंने यह भार भी अपने कन्धों पर ले लिया। हल्की बूँदा-बाँदी और सर्दी के बीच अधिवेशन की तैयारी शुरु हो गई। बड़े परिश्रम से चौरस भूमि तैयार कर विशाल पण्डाल खड़ा किया। दर्जनों छोलदारियाँ प्रतिनिधियों के ठहराने के लिए तैयार की गई। अन्य सभी प्रबन्ध जो कई सौ प्रतिनिधियों की सुविधा के लिए तैयार किये गये थे, पूर्ण हो गये। **कहते हैं आपत्ति काले मर्यादा नास्ति।** यहाँ भी वही हुआ। विधाता की लीला देखिए- 'सिर मुण्डाते ही ओले पड़े।' प्रकृति का ऐसा दुर्दनमनीय चक्र चला कि पूरी तैयारी पूर्ण होने पर उस क्षेत्र में ऐसी घनघोर वर्षा हुई जैसी विगत 50 वर्षों में कभी नहीं हुई थी। अमृतसर की गलियों और बाजारों में दो-दो फुट पानी भर गया। अधिवेशन के लिए बने पण्डाल के पर्दे, बाँस बल्लियाँ सजावट का सामान, बोर्ड, कनातें सब कुछ बाढ़ के पानी में बह गया। दर्जनों छोलदारियाँ बाढ़ के पानी में कागज की नाव की तरह तैरने लगी। समस्त परिसर एक विशाल झील के रूप में परिवर्तित हो गया। चारों तरफ जल हिलोरें ले रहा था। दिल दहलाने वाली बात यह थी कि वह 24 दिसम्बर की रात थी उसी दिन अमृतसर में कलकत्ता, मुम्बई, चेन्नई, पटना, कराची, लखनऊ आदि देशभर के नगरों से 12

स्पेशल रेलगाड़ियाँ अधिवेशन में सम्मिलित होने वाले प्रतिनिधियों को लेकर अमृतसर आने वाली थीं। पाठकगण सोचिए इस रोंगटे खड़े कर देने वाली अनहोनी आपदा में उस बृहद् अधिवेशन के कार्यकर्ताओं और विशेष रूप से (संयोजक) स्वामी श्रद्धानन्द के तन-मन पर क्या गुजर रही होगी? कल्पना से भी हृदय काँपता है।

पर वाह रे नर नाहर श्रद्धानन्द! अगाध आत्मविश्वास और अतुल साहस का पुंज वह पुरुष सिंह न तो सिर पकड़ कर बैठा और न भाग्य को कोसने में उसने समय बर्बाद किया, न ही उसने आपातकालीन मीटिंग बुलाई। बस कुछ विश्वस्त कार्यकर्ताओं को आवश्यक निर्देश देकर वह नर केसरी नंगे सिर और नंगे पैर अमृतसर की गली-गली और एक-एक मोहल्ले में घूमकर लोगों से अपील कर रहा था- 'अमृतसर वासियों! देशभर से आने वाले प्रतिनिधियों के लिए अपने घरों में स्थान खाली करो। उनके भोजन आदि की व्यवस्था कर अतिथि सेवा कर अपने नगर की लाज बचाओ। भारत माता आपकी ओर आशा भरी निगाहों से निहार रही है। यह आपके लिए परीक्षा की घड़ी है। समय कम है जिम्मेदारी अधिक है-उठो-बढ़ो-फर्ज पूरा करो।' आर्य संन्यासी की इस अपील का नगरवासियों पर जादुई असर हुआ। लोग तुरन्त अपने-अपने वाहन लेकर रेलवे स्टेशनों पर पहुँच गये और जिनके सामने जो प्रतिनिधि आया उसी को अपने घर ले गये और उनके ठहरने तथा भोजन आदि की उचित व्यवस्था की।

बाहर से आये प्रतिनिधि बड़ी हताशा तथा असमंजस में थे। स्वाभाविक था एक तो सरकारी प्रकोप। ऊपर से वर्षा की दैवी आपदा, हाड़ कँपाने वाली तेज बर्फीली दिसम्बर की शीतलहर। पर अमृतसर के साहस और सेवा से काँग्रेस के प्रतिनिधि अभिभूत हो उठे और उनकी जी भरकर सराहना की।

इन सब आपदाओं के बावजूद काँग्रेस का वह ऐतिहासिक अधिवेशन शुरु हुआ। काँग्रेस के इतिहास में यह पहला अवसर था जब मंच से एक भगवा वेशधारी तेजस्वी संन्यासी ने राष्ट्रीय महासभा के मंच से स्वागताध्यक्ष के रूप में राष्ट्रीय भाषा (हिन्दी) में अपना भाषण दिया। कुछ अंश- 'देश के

कोने से पधारे मान्य प्रतिनिधिगण, जिस हुकूमत के नशे में चूर मनुष्यों का जीवन ही स्वार्थ में लिप्त हों, उनकी समझ में न तो सत्य का गौरव आ सकता है और न वे सत्याग्रह की शान और गम्भीरता को समझ सकते हैं। माननीयो! यदि प्यारे राष्ट्र को स्वतंत्र देखना और करना चाहते हो तो स्वयं सदाचार की मूर्ति बनकर अपनी संतानों के लिये सदाचार की बुनियाद रख दो। याद रखिये जब देश में सदाचारी ब्रह्मचारी शिक्षक होंगे, और शिक्षा भी राष्ट्रीय होगी तभी राष्ट्र की जरूरतें पूरी होंगी। नहीं तो यदि इसी तरह आपकी संतानें विदेशी विचारों, संस्कृति और सभ्यता को ढोती रहेंगी तो गुलामी कैसे दूर होगी?

उस देश के देशी-विदेशी समाचार-पत्रों ने भी स्वामी जी के इस भावपूर्ण अद्भुत भाषण को शिक्षा, सदाचार, सभ्यता और सदाचार जैसे आदर्श विचारों को अपूर्व तथा प्रेरणास्पद कहा। मं. गाँधी ने 'यंग इण्डिया' में लिखा- 'स्वागत समिति के अध्यक्ष स्वामी श्रद्धानंद जी का भाषण उच्चता, पवित्रता, गम्भीरता और सच्चाई का श्रेष्ठतम नमूना था। मुम्बई के तत्कालीन प्रसिद्ध पत्र 'इण्डियन सोशल रिफार्मर' ने लिखा - 'अमृतसर काँग्रेस में सबको ही सहसा अपनी ओर खींचने और प्रभावित करने वाले महान व्यक्तित्व के धनी स्वामी श्रद्धानन्द थे। काषाय वस्त्रों में वह विशाल, ओजस्वी तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व जिसका मुखमण्डल स्वर्गोपम तेज से देदीप्यमान था, वह चमत्कारी पुरुष उस संगठन के छोटे से छोटे कार्य का स्वयं निरीक्षण करते हुए यत्र-तत्र सर्वत्र दिखाई पड़ते थे। उनके अद्भुत शिक्षाप्रद भाषण को वर्षों तक याद किया जायेगा।

स्वामी श्रद्धानन्द का नाम होठों पर आते ही उन्हें केवल एक धार्मिक सुधारवादी नेता या फिर गुरुकुल के संस्थापक के रूप में ही विशेष रूप से देखा जा सकता है। स्वामी जी के प्रारंभिक जीवन पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि तरुणाई के चढ़ाव से लेकर यौवन के उतार तक उनका जीवन बड़ा ही अव्यवस्थित तथा संशयात्मक रहा। लेकिन यथा समय उन्होंने अपने चरित्र से यह सिद्ध कर दिया कि यौवन में भोग विलास का सम्पन्न जीवन बिताने वाला व्यक्ति भी ब्रह्मचर्य का उद्धारक महात्मा और संन्यासी बन सकता है। तहसीलदारी

में प्रवेश करने वाला व्यक्ति भी सत्याग्रही बनकर जेल जा सकता है। सर्वथा निरंकुश जीवन बिताने वाला भी धार्मिक दृष्टि से जनता का मार्गदर्शक बन सकता है। युवावस्था की लहर में बहकर और विलासिता के अन्ध कूप में डूबने वाला व्यक्ति भी महान संयमी, त्यागी तपस्वी और दृढ़व्रती बन सकता है। स्वामी श्रद्धानंद के जीवन का यही सार है।

स्वामी श्रद्धानन्द की कार्य प्रणाली से किसी को मतभेद हो सकता है। किन्तु उनका राष्ट्र-प्रेम, भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा तथा हिन्दी के प्रति उनका लगाव स्वयं सिद्ध है। उनकी भावना चाँदनी की तरह उज्ज्वल तथा गंगाजल की भाँति निर्मल थी। वे आर्य जाति की शान थे। दलित समुदायों के उद्धारक थे। हिन्दू मुसलमान एकता के मसीहा थे। आजादी की तड़प उन्हें बैचेन करती थी। अशिक्षा तथा अछूत समस्या उनके मस्तिष्क को झकझोरती थी।

जब स्वामी जी भयानक बीमारी से ग्रस्त थे, दुर्बल अवस्था में बिस्तर पर लेटे हुए थे, तभी 23 दिसम्बर 1926 को एक मतान्ध मुसलमान अब्दुर रशीद ने पिस्तौल की गोली से उनकी हत्या कर उन्हें शहीद कर दिया। यह अनहोनी खबर सुनकर दिल्ली शोक सागर में डूब गई। स्वामी जी के निधन पर मं. गाँधी ने अपनी भाव-भरी श्रद्धांजलि में कहा था : "दुनिया में ऐसे तो बहुत से लोग हुए जिनका जीवन तो शहीदों का था, लेकिन मौत साधारण थी। लेकिन स्वामी श्रद्धानन्द जी का तो जीवन भी शहीदों का था और मृत्यु भी शहीदों जैसी थी, भला ऐसी महान आत्मा को कौन अपनी श्रद्धा भक्ति व्यक्त न करेगा?

किसी कवि ने तो स्वामी श्रद्धानन्द की मृत्यु शय्या से यह ध्वनि भी सुनी- जिसे उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है:- वह ध्वनि यह थी।

"सर देके राहे कौम में ऐसा मजा मिला।
हसरत ये बाकी रह गई-कोई और सर न था।।"

*24/4 बिशन स्वरूप कालोनी,*
*पानीपत-132103, दूरभाष : 0180-2643700*

# लो सीना खुला है, हिम्मत हो तो गोली चला दो-स्वामी श्रद्धानंद

**(30 मार्च, 1919 की चाँदनी चौक की लोमहर्षक घटना)**

वे दिन खिलाफत आन्दोलन के थे। सुदूर अफगानिस्तान में मुस्लिमों की व्यवस्था में तत्कालीन शासक ने कुछ परिवर्तन कर दिया। भारत के लाखों मुसलमानों ने उसे 'इस्लाम में हस्तक्षेप' घोषित कर उसका विरोध करना शुरू कर दिया। उन दिनों भारतीय राजनीति में एक छोर पर महात्मा गाँधी और दूसरे छोर पर स्वामी श्रद्धानंद। यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि उन दिनों दिल्ली में स्वामी श्रद्धानंद (महात्मा मुंशीराम) का वर्चस्व था। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतिमूर्ति थे। उनका व्यक्तित्व भी अन्यों की अपेक्षा अत्यधिक प्रभावशाली था। डॉ. अजमल खाँ से उनकी घनिष्ठ मैत्री थी। स्वामी श्रद्धानन्द उन दिनों नया बाजार (अब श्रद्धानन्द बाजार) में रहते थे।

वस्तुतः तुर्की के खलीफा का प्रभाव इस्लामी जगत में बहुत हो गया था। अंग्रेजों की कूटनीति के कारण खलीफा को अपदस्थ होना पड़ा जिसके परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण इस्लामी जगत में बहुत प्रतिक्रिया रही। दिल्ली के मुसलमानों ने इसका विरोध विशाल रूप में करने का निश्चय किया। उन्होंने तत्कालीन अपने एक मात्र नेता 'स्वामी श्रद्धानंद' से इसका नेतृत्व करने के लिए निवेदन किया। स्वामी श्रद्धानंद जो कि आर्यसमाज के भी एक छत्र नेता थे। मुसलमानों के अनुरोध पर विचार कर इसकी अध्यक्षता करना स्वीकार कर लिया। बस फिर क्या था, पूरी दिल्ली में एक विशेष चहल-पहल मच गई। मुसलमानों के निर्णय के अनुसार 'स्वामी श्रद्धानंद' का एक विशाल जुलूस निकाला गया जो चाँदनी चौक होता हुआ नगर की जामा मस्जिद की ओर चलकर समाप्त हुआ। स्वामी जी को बहुत ही आदर और श्रद्धा के साथ

जामा-मस्जिद के अन्दर जाकर ऊँचे आसन पर बैठाया गया। इस अवसर पर दिल्ली के सभी क्षेत्रों में असंख्य मुसलमान उस साहसी और वीर संन्यासी की वक्तृता सुनने के लिए एकत्रित हुए थे। इतनी भारी भीड़ इसके पहले कभी भी नहीं देखी गई थी।

*[इस्लाम के इतिहास में सम्भवतः यह पहला अवसर था जब जामा-मस्जिद के मिम्बर से एक वैदिक (हिन्दू) संन्यासी को व्याख्यान देने के लिए मुसलमानों द्वारा आदर तथा श्रद्धा सहित आमंत्रित किया गया हो। यह अवसर मानों स्वयं इस्लाम के पुरोधाओं के लिए बहुत ही गौरव और मानवीय मूल्यों को निश्चित करनेवाला सिद्ध हुआ। इससे ने केवल स्वामी श्रद्धानंद अपितु 'इस्लाम' ही गौरवान्वित हुआ-सम्पादक]*

जामा-मस्जिद के मिम्बर से स्वामी श्रद्धानन्द ने मानव कल्याण तथा विश्व-मानवता का उपदेश देने वाला यह मंत्र उच्चारित किया-

**त्वं हि नः पिता वसो,**
**त्वं माता शतक्रतो विभूविथ अधा ते सुम्नमीमहे।।** ऋग्वेद-8-38-99

अर्थात् "हे सर्वव्यापक प्रभो! आप ही हमारे पिता तथा माता हो। तुम्हीं ने कृपा करके इस सृष्टि की रचना की है। आपने ही विश्व के सभी प्राणियों की भलाई के लिए अनेक वस्तुओं का सृजन किया है। हम सब आपकी कृपा और अनुग्रह प्राप्त करने के लिए आपसे प्रार्थना करते हैं। विश्व के सभी मनुष्य परस्पर एक ही कुटुम्ब के सदस्य हैं। हम सभी पर आप अपनी कृपा की अमृत-वर्षा सदैव किया करें।"

स्वामी जी की यह प्रार्थना समाप्त होते ही मानव-मेदिनी में ऐसी शांति छा गई कि सभी मंत्र-मुग्ध होकर स्वामी जी का व्याख्यान सुनते रहे। कहते हैं, दिल्ली में ऐसी विशाल सभा और ओजस्वी भाषण इससे पहले कभी भी नहीं हुआ था। इसके पश्चात् दिल्ली का सामाजिक और राजनैतिक वातावरण ही एकदम बदल गया। सभी नागरिक अपने सभी धार्मिक तथा

साम्प्रदायिक मतभेद भुलाकर बड़े ही सौहार्दपूर्ण वातावरण में रहने लगे। स्वामी जी को अनेक मुस्लिम महिलाएँ अपना 'दरवेश' मानने लगी थीं। कई महिलाएँ अपनी कई 'मनौती' मनाने इनके निकट बड़ी श्रद्धा से आती रहती थीं। यहाँ तक कि कई मुस्लिम परिवारों के पारिवारिक झगड़े आदि सुलझाने के लिए कुछ मुसलमान उनके पास आने लगे। इन दिनों स्वामी श्रद्धानंद "बिना ताज के बादशाह' माने जाते थे।

तत्कालीन ब्रिटिश सरकार स्वामी श्रद्धानंद के इस प्रभाव को देखकर चिन्तित हो उठी। उसे हिन्दू मुस्लिम एकता की अपेक्षा स्वामी जी की लोकप्रियता से अत्यधिक भय लगने लगा। विशेषकर दिल्ली के अनेक अंग्रेज राज्याधिकारी इस सामाजिक एकता तथा सौहार्द को बिगाड़ने का अन्दर षड्यन्त्र करने लगे। 30 मार्च 1919 की चाँदनी चौक की ऐतिहासिक घटना के कारण स्वामी श्रद्धानंद की ख्याति राष्ट्रीय स्तर पर हो गई। स्वामी जी को ज्ञात हुआ कि कुछ अंग्रेज-अधिकारियों ने लाल किले के मैदान में कुछ निहत्थे नागरिकों को अपनी गोली का निशाना बना दिया है। इस खबर से पूरी दिल्ली में हलचल मच गई। फिर क्या था, एक विशाल जुलूस निकाला गया जिसका नेतृत्व स्वामी श्रद्धानंद कर रहे थे। यह जुलूस वर्तमान नगर निगम चाँदनी चौक होता हुआ लाल किले की ओर जाने वाला था। अब यह विशाल जुलूस चाँदनी चौक के मध्य में पहुँचा तब अनेक अंग्रेज सिपाही अपनी भरी हुई बन्दूकें तथा उन पर जहरीली संगीनें लगाये, जुलूस के सामने आकर खड़े हो गये। वे जुलूस को वहाँ से एक इंच भी आगे बढ़ने नहीं देना चाहते थे। ऐसे में, उन अंग्रेज सिपाहियों ने स्वामी श्रद्धानंद को यह धमकी दी थी कि यदि तनिक भी आगे बढ़े तो संगीनें भोंक दी जायेंगी और गोलियों से जनता भून दी जाएगी। जो आर्य संन्यासी आत्मा की अमरता में तथा ईश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा और आस्था रखता हो, उसे बन्दूक की गोलियों

का भय कदापि डरा नहीं सकता था। उस निर्भीक आर्य संन्यासी स्वामी श्रद्धानंद ने अपने सीने पर पड़े हुए भगवे आँचल को हटाकर अत्यन्त जोशीली आवाज में कहा- "लो मैं यहाँ खड़ा हूँ। यदि तुम्हारी सरकार में शक्ति हो तो मेरे सीने पर पहले गोली चलाओ और फिर इस निहत्थी जनता पर अपनी कायरतापूर्ण हरकत से गोली चलाना।" उस निर्भीक संन्यासी की यह दहाड़ सुनकर सिपाही पीछे हट गये और अपनी संगीनें वापस ज्यों की त्यों कर लीं। असंख्य जन-मेदिनी का नेतृत्व करते हुए स्वामी श्रद्धानंद जुलूस को आगे ले गये और फिर वह जुलूस एक विशाल सभा के रूप में बदल गया। उस सभा में स्वामी श्रद्धानंद की अध्यक्षता में अनेक राष्ट्रवादी हिन्दू-मुस्लिम नेताओं के जोरदार व्याख्यान हुए।

उल्लेखनीय है कि तत्कालीन नगर निगम के सम्मुख जिस स्थान पर गोरे सिपाहियों के सम्मुख स्वामी श्रद्धानंद ने अपना सीना तान कर गोली चलाने की गंभीर गर्जना की थी, आज उसी स्थान पर श्रद्धानंद की मानव-कद कांस्य प्रतिमा उक्त ऐतिहासिक स्थल की शोभा बढ़ा रही है। इस प्रतिमा को देखकर वह पुरानी स्मृति पुनः साकार हो उठती है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास जब पूर्वाग्रह-रहित होकर लिखा जाएगा, उस समय दिल्ली में घटित उक्त ऐतिहासिक घटना का अवश्य ही उल्लेख किया जाएगा। साम्प्रदायिक सौहार्द की झलक देने वाली यह महत्त्वपूर्ण घटना वर्तमान सन्दर्भों में और भी अधिक मूल्यवान हो उठती है। आशा है कि हम पीछे मुड़कर अपने अतीत में झाँककर अपना वर्तमान और भविष्य सुधारने का प्रयास करेंगे।

अन्त में, ऐसे महान त्यागी एवं वीर सन्यासी स्वामी श्रद्धानंद के पवित्र चरणों में बारम्बार प्रणाम। जो बोले सो अभय।

*मनुदेव 'अभय' सुकिरत,*
*सुदामा नगर, इन्दौर-5*

# बच्चों के चाचा नेहरु

देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को बच्चों से विशेष प्रेम था। यह प्रेम ही था जो उन्होंने अपने जन्मदिवस को बाल दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया। जवाहरलाल नेहरू को बच्चों से लगाव था तो वहीं बच्चे भी उन्हें चाचा नेहरू के नाम से जानते थे। जवाहरलाल नेहरू ने नेताओं की छवि से अलग हटकर एक ऐसी तस्वीर पैदा की जिस पर चलना आज के नेताओं के बस की बात नहीं। एक दिन तीन मूर्ति भवन के बगीचे में लगे पेड़-पौधों के बीच से गुजरते हुए घुमावदार रास्ते पर नेहरू जी टहल रहे थे। उनका ध्यान पौधों पर था। तभी पौधों के बीच से उन्हें एक बच्चे के रोने की आवाज आई। नेहरूजी ने आसपास देखा तो उन्हें पेड़ों के बीच से उन्हें एक-दो माह का बच्चा दिखाई दिया जो रो रहा था। जवाहरलाल नेहरू ने उसकी माँ को इधर-उधर ढूँढा पर वह नहीं मिली। चाचा ने सोचा शायद वह बगीचे में ही कहीं माली के साथ काम कर रही होगी। नेहरूजी यह सोच ही रहे थे कि बच्चे ने रोना तेज कर दिया। इस पर उन्होंने उस बच्चे की माँ की भूमिका निभाने का मन बना लिया।

वह बच्चे को गोद में उठाकर खिलाने लगे और वह तब तक उसके साथ रहे जब तक उसकी माँ वहाँ नहीं आ गई। उस बच्चे को देश के प्रधानमंत्री के हाथ में देखकर उसकी माँ को यकीन ही नहीं हुआ। दूसरा वाक्या जुड़ा है तमिलनाडु से। एक बार जब पंडित नेहरू तमिलनाडु के दौरे पर गए तब जिस सड़क से वे गुजर रहे थे तो लोग साइकलों पर खड़े होकर कहीं दीवारों पर चढ़कर नेताजी को निहार रहे थे। प्रधानमंत्री की एक झलक पाने के लिए हर आदमी इतना उत्सुक था कि जिसे जहाँ समझ आया वहाँ खड़े होकर नेहरू जी को निहारने लगा।

इस भीड़ भरे इलाके में नेहरुजी ने देखा कि दूर खड़ा एक गुब्बारे वाला पंजों के बल खड़ा डगमगा रहा था। ऐसा लग रहा था कि उसके हाथों के तरह-तरह के रंग-बिरंगे गुब्बारे मानो पंडितजी को देखने के लिए डोल रहे हों। जैसे वे कह रहे हों हम तुम्हारा तमिलनाडु में स्वागत करते हैं। नेहरूजी की गाड़ी जब गुब्बारे वाले तक पहुँची तो गाड़ी से उतरकर वे गुब्बारे खरीदने के लिए आगे बढ़े तो गुब्बारे वाला हक्का-बक्का-सा रह गया।

जवाहरलाल नेहरू ने अपने तमिल जानने वाले सचिव से कहकर सारे गुब्बारे खरीदवाए और वहाँ उपस्थित सारे बच्चों को वे गुब्बारे बँटवा दिए। ऐसे प्यारे चाचा नेहरू को बच्चों के प्रति बहुत लगाव था। नेहरू जी के मन में बच्चों के प्रति विशेष प्रेम और सहानुभूति देखकर लोग उन्हें चाचा नेहरू के नाम से संबोधित करने लगे और जैसे-जैसे गुब्बारे बच्चों के हाथों तक पहुँचे। बच्चों ने चाचा नेहरू-चाचा नेहरू की तेज आवाज से वहाँ का वातावरण उल्लसित कर दिया। तभी से वे चाचा नेहरू के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

भारत के स्वतंत्रता सेनानियों ने कड़ी मेहनत के बाद भारत को आजाद करवाया। आजादी की कड़ी लड़ाई के बाद स्वतंत्र भारत को सँभालना भी एक जंग से कम न था। आजादी के बाद विभाजन की आँधी से लड़ने के लिए काफी मुशक्कत की जरूरत थी और इस दौर में भी भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों ने हार न मानते हुए सरकार सँभालने में अहम भूमिका निभाई। ऐसे ही नेताओं में सर्वश्रेष्ठ थे पंडित जवाहरलाल नेहरू। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री और एक अहम स्वतंत्रता सेनानी थे पंडित जवाहरलाल नेहरू।

पंडित जवाहरलाल नेहरु का जन्म 14 नवंबर 1886 को उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद में हुआ था। जवाहर लाल नेहरु के

पिता मोतीलाल नेहरु एक धनाढय वकील थे। उनकी माँ का नाम स्वरूप रानी नेहरू था। वह मोतीलाल नेहरू के इकलौते पुत्र थे। इनके अलावा मोती लाल नेहरू की तीन पुत्रियाँ थीं। उनकी बहन विजयलक्ष्मी पंडित बाद में संयुक्त राष्ट्र महासभा की पहली अध्यक्ष बनीं।

जवाहर नेहरु का बचपन बेहद आराम से बीता। उच्च स्कूलों और कॉलेजों से शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी वह हमेशा जमीन से जुड़े रहे। उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा हैरो से, और कॉलेज की शिक्षा ट्रिनिटी कॉलेज, लंदन से पूरी की। इसके बाद उन्होंने अपनी लॉ की डिग्री कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पूरी की थी। नेहरू जी का परिवार उनकी पढ़ाई को बेहद गंभीरता से लेता था और उच्च शिक्षा पर जोर देता था।

जवाहरलाल नेहरु 1912 में भारत लौटे और वकालत शुरू की। मार्च 1916 में नेहरू का विवाह कमला कौल के साथ हुआ, जो दिल्ली में बसे कश्मीरी परिवार की थीं। उनकी अकेली संतान इंदिरा प्रियदर्शिनी का जन्म 1917 में हुआ। बाद में वह भारत की प्रधानमंत्री बनीं।

वकालत में उनकी विशेष रुचि न थी और शीघ्र ही वे भारतीय राजनीति में भाग लेने लगे। 1912 ई. में उन्होंने बांकीपुर (बिहार) में होने वाले भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशन में प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। गाँधी ने भी युवा जवाहरलाल नेहरू में भारत का भविष्य देखा और उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

जवाहरलाल नेहरु को 1929 में काँग्रेस के ऐतिहासिक लाहौर अधिवेशन का अध्यक्ष चुना गया था। उन्होंने इस अधिवेशन में भारत के राजनीतिक लक्ष्य के रूप में संपूर्ण स्वराज्य की घोषणा की।

जवाहर लाल नेहरू ने 1920-1922 में असहयोग आंदोलन में

सक्रिय हिस्सा लिया और इस दौरान पहली बार गिरफ्तार किए गए। कुछ महीनों के बाद उन्हें रिहा कर दिया गया।

आजादी की लड़ाई के 24 वर्ष में जवाहरलाल नेहरु को आठ बार बंदी बनाया गया, जिनमें से अंतिम और सबसे लंबा बंदीकाल, लगभग तीन वर्ष का कारावास जून 1945 मे समाप्त हुआ। नेहरू ने कुल मिलाकर नौ वर्ष से ज्यादा समय जेलों में बिताया। अपने स्वभाव के अनुरूप ही उन्होंने अपनी जेल-यात्राओं को असामान्य राजनीतिक गतिविधि वाले जीवन के अंतरालों के रूप में वर्णित किया है।

नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए 1936, 1937 और 1946 में चुने गए थे। उन्हें 1942 में 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान गिरफ्तार भी किया गया और 1945 में छोड़ दिया गया। 1947 में भारत और पाकिस्तान की आजादी के समय उन्होंने अंग्रेजी सरकार के साथ हुई वार्ताओं में महत्त्वपूर्ण भागीदारी की। 1947 में आजादी के बाद वे भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने। उन्होंने भारत के पुनर्गठन के रास्ते में उभरी हर चुनौती का समझदारी पूर्वक सामना किया। जवाहरलाल नेहरू ने आधुनिक भारत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने योजना आयोग का गठन किया, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास को प्रोत्साहित किया और लगातार तीन पंचवर्षीय योजनाओं का शुभारंभ किया। उनकी नीतियों के कारण देश में कृषि और उद्योग का एक नया युग शुरु हुआ। नेहरू ने भारत की विदेश नीति के विकास में भी एक प्रमुख भूमिका निभाई।

# वेद धर्म रक्षार्थ प्रथम बलिदानी कुमारिल भट्ट

*-डॉ. अशोक आर्य*

वेद प्रभु की वाणी है। सृष्टि के आरम्भ में प्रभु ने प्राणी मात्र के उपयोग के लिए वेद ज्ञान का प्रकाश किया था किन्तु महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् इस देश में बौद्ध मत का एकछत्र राज्य स्थापित हो गया तथा वैदिक धर्म को अपमानित करने की एक परम्परा-सी ही आरम्भ हो गई। ऐसे समय में वेदवेत्ता कुमारिल भट्ट का जन्म जयमंगल नामक गाँव में पं. यज्ञेश्वर भट्ट तथा माता चन्द्रकला (यजुर्वेदी ब्राह्मण) के यहाँ हुआ। बालक ने योग्य गुरु के यहाँ वेद, वेदांग तथा अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया। उनकी धर्मपरायणता तथा विद्वत्ता के कारण उन्हें भट्ट-पाद् तथा सुब्रह्मण्यम भी कहा जाता था। आप के पास अनेक शिष्य विद्या अध्ययन के लिए आते थे, जिनमें विश्वरूप, प्रभाकर, पार्थसारथी तथा मुरारिमिश्र मुख्य थे। कुमारिल वैदिक धर्म के अनन्य भक्त थे। यह वह समय था जब बौद्ध मत के विकास के साथ ही वेदों की दशा निरन्तर गिर रही थी तथा वेदों का उपहास उड़ाया जाने लगा था, इससे आप अत्यन्त दुःखी थे। आपने बौद्ध मत के खण्डन का निश्चय किया किन्तु इसके लिए उन्हें बौद्ध मत से सम्बन्धित ग्रन्थों का अध्ययन करना था। बौद्ध ग्रन्थ उपलब्ध न थे। अतः अपने निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए आप श्रीनिकेतन नामक एक बौद्ध धर्माचार्य के पास शिष्य स्वरूप जा पहुँचे और बौद्ध मत का अध्ययन करने लगे। एक दिन आप एक मन्दिर की ऊँची दीवार पर बैठे थे कि आप की हत्या की योजना को साकार करते हुए आपके सहपाठियों ने आपको धक्का दे दिया। किन्तु आप बच गए। यह आप की वेद पर दृढ़ विश्वास व निष्ठा का ही परिणाम था। किन्तु हाँ इस घटना से आपको बौद्ध धर्म की सत्यता पर सन्देह अवश्य हो गया। आप समझ गए कि जो बौद्ध धर्म भूत- दया और

अहिंसा को मानता है, उसके अनुयायियों ने मेरी वेद के प्रति आस्था को देख मुझे मारने का प्रयास किया तो इस में दया व अहिंसा कहाँ हैं? यह तो अन्य धर्मावलम्बियों को अपनी ठोकर में रखना चाहते हैं। मैं इन पाखण्डियों से संसार को बचाने का यत्न करूँगा।

अब कुमारिल भट्ट वैदिक कर्मवाद का प्रचार करने लगे। ऐसा करते हुए आप एक दिन चम्पा नगरी जा पहुँचे। इस नगरी का राजा सुधन्वा भी बौद्ध धर्मानुगामी था जबकि उसकी पत्नी सच्चे अर्थों में वेदानुरागी थी। इस नगरी में घूम-घूम कर भट्ट जी सब परिस्थितियों का अध्ययन करने लगे। इसी बीच उनकी भेंट राज्य के माली से हुई जहाँ से उन्हें राजवंश की सब स्थिति का पता चला तथा यह भी ज्ञात हुआ कि राजकुमारी वेदानुरागी है। रानी विष्णु भगवान की उपासक है तथा माली उसके ही लिए फल-फूल एकत्र करने में लगा है। भट्टजी ने उस माली के माध्यम से रानी को अपना परिचय भेज दिया जिसे सुन रानी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। एक दिन भट्ट जी राजभवन के पास से निकल रहे थे तो उनके कानों में चिन्ता से भरे स्वर पड़े-

**"किं करोमि क्वगच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति।"**

भाव यह कि क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? वेदों का उद्धार कौन करेगा? यह सुन कुमारिल बोले-

**"माँ विषाद् वरारोहे! भट्टाचार्योऽस्मि भूतले।"**

अर्थात् हे रानी! खेद न कर! मैं कुमारिल भट्टाचार्य अभी इस पृथ्वी पर मौजूद हूँ। यह सुन रानी ने कुमारिल को अपने पास बुलवा कर अपनी व्यथा-कथा सुनाई।

कुमारिल जी को मिलकर रानी को बहुत सन्तोष हुआ तथा उनसे उन्हें बौद्ध मत की अनेक कमियों का भी पता चला। उन्हें यह भी कहा गया कि इन युक्तियों को प्रसंगवश राजा के सामने रखा करें ताकि धीरे-धीरे राजा के मन से बौद्ध मत के प्रति घृणा के भाव पैदा हों। विदुषी रानी ने ऐसा ही किया।

धीरे-धीरे राजा का हृदय बदलने लगा तथा वेदधर्म के प्रति उनका अनुराग बढ़ने लगा। वे वेदों को सम्मान देने लगे। इस मध्य ही कुमारिल ने बौद्ध मत के खण्डन के लिए सात ग्रन्थों की रचना कर डाली। इतना ही नहीं बौद्धों का सामना करने के लिए अपने शिष्यों की एक विशाल मण्डली भी तैयार कर ली। अब स्थान-स्थान पर जाकर वह वेद का मण्डन तथा बौद्ध का खण्डन करते हुए शास्त्रार्थ करने लगे। बौद्ध धर्म गुरु उनके नाम से ही घबराने लगे।

राजा सुधन्वा के कानों तक कुमारिल जी के नाम की चर्चा पहुँच चुकी थी तंथा वह भी उन्हें मिलने के इच्छुक थे कि एक दिन अवसर पाकर कुमारिल जी राजा के यहाँ जा पहुँचे। यहाँ एक विशाल सभा का आयोजन हुआ तथा बड़े धुरन्धर बौद्ध विद्वानों को बुलाकर शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया। एक ओर बौद्ध धर्माचार्यों की विशाल सेना तथा दूसरी ओर अपने दल सहित आचार्य कुमारिल दर्शकों व श्रोताओं से राज भवन भरा था। इस मध्य ही समीपस्थ वृक्ष से कोयल कूक उठी जिससे सभा भवन गूँज उठा। इस अवसर पर कुमारिल भट्ट ने जो श्लोक पढ़ा उसका भाव था- "अरे कोयल! मलिन, नीच और श्रुति-दूषक काक-कुल से यदि तेरा सम्बन्ध न हो, तो तुम वास्तव में.....

जिस प्रकार कुमारिल जी उत्तर-भारत में बौद्धों का नाश करने में लगे थे, उस प्रकार ही शंकराचार्य जी भी दक्षिण-भारत में बौद्धों को समाप्त करने में लगे थे। उन्होंने कुमारिल जी के सम्बन्ध में चर्चा सुनी तो उन्हें मिलने का निश्चय कर प्रयाग आये किन्तु यहाँ उनके तुषाग्नि में प्रवेश की चर्चा सुन वह दौड़े हुए त्रिवेणी संगम पहुँचे तथा शान्त चित कुमारिल को जलती अग्नि में बैटे देख दंग रह गए तथा अनायास ही उनके मुख से निकला-

**"धन्य है कुमारिल भट्ट! वेदों का उद्धार करना तुम्हारा ही काम था। शास्त्रों के प्रति इसी अविचल श्रद्धा, अपूर्व**

**कर्त्तव्यनिष्ठा और अगाध धर्मपरायणता इस पृथ्वी पर तुम्हारी ही देखी गई। तुम धन्य हो। तुम्हारी जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है।"**

धधकती चिता के सम्मुख वार्तालाप करने में बिलम्ब का अवसर न था अतः शीघ्रता से अपना परिचय देते हुए बोले- **"मैं आप से शास्त्रार्थ करना चाहता था।"** शंकर ने उन्हें स्वरचित भाष्य आदि भी दिखाए। उन्हें देख कुमारिल बहुत प्रसन्न हुए तथा आत्मदाह का कारण भी बताया और कहा- **"मैं तो शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूँ। आप का उद्देश्य निश्चय ही बड़ा उत्तम है। मैं अपना काम कर चुका हूँ। अब आप अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त मेरे प्रधान शिष्य मण्डन मिश्र से मिलिए।" यह भी कहा कि "जब तक मेरा शरीर भस्म न हो जाए, तब तक आप मेरे सामने ही खड़े रहिए। मुझे आपसे बड़ा प्रेम है; क्योंकि आपने वेदों के उद्धार का झण्डा उठाया है।**

कुमारिल तदुपरान्त मौन हो गए तथा अग्नि जोरों से जलने लगी, पुण्यात्मा कुमारिल प्रायश्चित्त करते हुए भस्म हो गए। इससे शंकराचार्य बड़े दुःखी हुए। कुमारिल के भस्म होने का कारण उनका कर्मकाण्ड था। इस कारण शंकराचार्य जी ने कर्मकाण्ड का भी खण्डन करने का निश्चय किया तथा ज्ञान काण्ड का मंडन करने लगे।

धन्य है कुमारिल, जिसने धर्म को पुनः स्थापित करने के लिए आजीवन प्रयत्न किया तथा धर्म स्थापनार्थ स्वयं ही अपना बलिदान भी दिया। आप वेद के न केवल प्रकाण्ड पण्डित ही थे अपितु बौद्ध धर्म के मर्म को भी समझाते थे। इस काल में वेद की शिक्षाएँ रसातल की ओर जा रही थीं। आपने वेद की रक्षा की। इस कारण आप के बलिदान के साथ ही आपका नाम सदा के लिए अमर हो गया।

*104, शिप्रा अपार्टमेंट,*
*कौशम्बी, गाजियाबाद*

## 'Nehru's principles made Partition unavoidable – Jinnah turned from Secularism to religion

*-Nisid Hajari*

*Nisid Hajari's Book Midnight's Furies : The Deadly Lagacy of India's Partition explores 1947 in new light. Speaking with Srijana Mitra Das. Hajari discussed Nehru, Jinnah, Mahatma Gandhi - and the moment when modern jihad began:*

**What led you to research Partition?**

It grew out of my Newsweek work. I'd been overseeing international coverage from 2001-2010, encompassing Afganistan's war. I kept getting asked in the US, why does Pakistan accept aid from America and still support the Taliban?

If you're from this region, you understand how Pakistan views the world, where India is a central threat and anything to combat that threat makes sense. It seemed important the story of how Pakistan developed this worldview-which begins at Partition- be retold now.

**Your research shows a new Nehru adamant on power, undeterred by possible Partition?**

Nehru was a man of principle. But he probably stuck to principle at little too closely. Before Partition, there were moments for political compromise - he found it very hard to make these. He stuck to a principled, hard line-which made it impossible to avoid Partition.

That was preferable to him than sharing power with Jinnah. I'don't think Nehru wanted power for himself but he wanted strong central government. If you gave autonomy to so-called Pakistan areas, then what would happen to Hyderabad? or Kashmir?

**Did Jinnah surprise you?**

Yes, First, Jinnah was modern, secular, a strong natinoalist. The turn he takes in 1937, when he becomes a Muslim nationalist, is disturbing. To build his base, he starts ac-

cepting things he wouldn't have tolerated before.
I don't think Jinnah ever wanted riots-but he couldn't impose his vision.

**Isn't Mahatma Gandhi's reported statement, about letting India have a bloodbath but no delays on freedom, startling?**

It's a famous quote though, Gandhi was an amazing figure but as a politician towards the end, I'm not sure he was the most helpful. He perhaps didn't quite appreciate his words' impact, For instance, after Noakhali's riots, Gandhi said people shouldn't retaliate, they should shame oppressors-this inflamed less principled Hindu figures, who used this for riots.

**Critical of RSS and Sikh groups then, are you apprehensive of reactions now?**

I'm aware this could be controversial. I strove to be accurate and fair but hiding's no good. If you don't acknowledge facts, don't understand how the other side might view things, you can never move forward.

**While you describe Nehru's good friendship with Padmaja Naidu, you refer fleetingly to Edwina Mountbatten-why?**

Any romance doesn't seem to move until Edwina's left India. I didn't want to imply an affair somehow influenced how the British dealt with India.

**But British officials did advise Jinnah on Kashmir?**

A British general prevented Jinnah from sendling troops there when India has sent theirs.

**Doesn't that moment show today's jihad politics - beginning?**

Yes, it began right then. This strategy was created and they've persisted with it.
There was talk of a summit, a political solution, between India and Pakistan but Nehru cancelled-Jinnah then decided to support insurgency covertly.
Then, it becomes clearly state-sponsored.

# THEY (GANDHI & AMBEDKAR) WERE RIVALS, BUT WITH THE SAME MISSION

*-Rama Chandra Guha*

Unlike Patel and Nehru, who were lifelong colleagues in the Congress, Gandhi and Ambedkar were never in the same party. When, in the mid 1920s, Ambedkar returned from his studies abroad, Gandhi had already assumed control of the Congress led freedom struggle. There was a massive halo around him. He was the 'Mahatma' everyone deferred to. But, as the late DR Nagaraj once wrote, Ambedkar was too proud a man to play the role of Hanuman or Sugreeva to Gandhi's Ram. So he charted his own political trajectory, independent of, and opposed to, Gandhi and the Congress party.

Through the 1930s and 1940s, Ambedkar fiercely criticised Gandhi. He thought the Gandhian approach to 'Harijan Uplift' patronising and condescending. Gandhi wanted to purify Hinduism by removing the taint of untouchability. Ambedkar, on the other hand, rejected Hinduism altogether. He thought the Dalits must convert to another faith if they wished to become equal citizens.

Ambedkar and Gandhi were certainly political adversaries in their lifetimes. Now, six decades after their deaths, must we still see them as such? The ideologues of the left and right do. In 1996, Arun Shourie wrote a long book dismissing Ambedkar as a 'false god'. He made two main charges against Ambedkar: first, that he sided with the British rather than with the nationalists (he was in the viceroy's executive council at the time of the Quit India movement); and second, that he used polemical and occasionally abusive language against Gandhi.

Two decades later, Arun Shourie has found his left-wing counterpart in Arundhati Roy, who, in a book-length essay, has dismissed Gandhi as a false Mahatma. She claims that Gandhi was a conservative defender of the caste system who changed his views 'at a glacial pace'. Both Arun Shourie and Arundhati Roy see history in black and white, in terms of heroes and villains. A historian, however, must be attentive to nuance, to the shades of gray. So, contra Shourie, one must ask, why did Ambedkar side with the British? This was because the Congress was dominated by Brahmins, who had of course oppressed Dalits in the past, and might do so again if they came to power in independent India. For the same reason, other great low-caste reformers such as Jotiba Phule and Mangu Ram (the leader of the Adi-Dharm movement in the Punjab) also thought the Raj a lesser evil as compared to the Congress.

As for Roy, it is only by selectively quoting Gandhi out of context that she can paint him as a slow-moving reactionary. As careful scholars such as Denis Dalton, Mark Lindley, and Anil Nauriya have demonstrated

Gandhi steadily became more direct in his critique of caste. To begin with, he attacked untouchability alone, while leaving the other rules of caste intact. Then, through his temple-entry movement, he began advocating inter-mingling and inter-dining as well. Finally, he insisted that the only marriage he would solemnise in his ashram was one between a Dalit and a Savarna, thus calling into question the very basis of the caste system itself.

Gandhi's campaign to abolish untouchability may seem timid to the Leftists of today, but it was regarded as extremely daring at the time. It struck at the very core of Hindu orthodoxy. The Shankaracharyas were enraged that a mere Bania who knew little Sanskrit dare challenge scriptural injuctions that mandated untouchability. In a petition to the colonial authorities, they demanded that Gandhi be ostracised from the Hindu fold. During Gandhi's anti-untouchability tour of 1933-34, Hindu Mahashabha activists showed him black flags, threw faeces at him, and in Pune in June 1934 even attempted to assassinate him.

Gandhi's campaign was unpopular within his own party. Nehru, Bose, Patel and company believed the Mahatma should have set social reform aside and focused exclusively on the winning of swaraj.

Remarkably, despite their disagreements, Gandhi persuaded Nehru and Patel to make Ambedkar a member of the first Cabinet of independent India. Gandhi told them that freedom had come not to the Congress, but to the nation. The first Cabinet, he said, must draw upon the finest talent regardless of party affiliation. That is how Ambedkar became law minister.

For those who seek a subtle and scholarly assessment of the Gandhi-Ambedkar relationship, the book to read is D.R. Nagraj's the Flaming Feet. Nagaraj writes that "from the viewpoint of the present, there is a compelling necessity to achieve a synthesis of the two". This is absolutely correct. For, social reform takes place only when there is pressure from above and from below. Slavery would not have been abolished had not guilt. ridden whites like Abraham Lincoln responded to the critiques of the likes of Frederik Douglass. Civil rights would not have been encoded into law had Lyndon Johnson not recognised the moral power of Martin Luther King and his movement.

Although they were rivals in their life-time, from the vantage-point of history one can clearly see that Gandhi and Ambedkar played complementary roles in the undermining of an obnoxious social institution.

For no upper caste Hindu did as much to challenge untouchability as Gandhi. And Ambedkar was of course the greatest leader to emerge from within the ranks of the Dalits. Although the practice of untouchability has been abolished by law, discrimination against Dalits still continues in many parts of India. To end it fully, one must draw upon the legacy of both Ambedkar and Gandhi.

***Gandhi Before India***

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION ACKNOWLEDGES WITH THANKS RECEIPT OF THE FOLLOWING DONATIONS:

1. Shri Monohar Lal Sodhi, C3A/64B, Janakpuri, New Delhi-110058 Rs. 5,000/-
2. Mrs. Kusum Rastogi, C3A/27B, Janakpuri, New Delhi-110058 Rs. 500/-

Donations to the Foundation are eligible for Tax Exemption under Section 80G of the Income Tax Act 1960 Vide No.DIT(E)1/3313/DELBE 21670-2503210 dated 25.03.2010

Date of Pubn. : 30.11.2017 Posted at - NIE - H.O. Postal Date : 2-3 Dec. 2017
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2017-2019

**इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुराडाशेन सविता जजान।**
**यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम्।।**
**ऋषि–शंखः, देवता–सविता, छन्दः – भुरिक् त्रिष्टुप्** (यजु.19/85)

हे मनुष्यो! जैसे (सुत्रामा) अच्छी तरह रोग से शरीर की रक्षा करने वाला (सविता) प्रेरक इन्द्र रोग नाशक श्रेष्ठ विद्वान् चिकित्सा करता हुआ अपनी आत्मा से यथार्थ भाग को प्रसिद्ध करता और (पुरोडाशेन) अच्छी तरह संस्कार किए हुए अन्न और (वायव्यैः) पवनों में उत्तम अर्थात् सुख देने वाले मार्गों से जो हृदय से दाहिनी ओर से स्थित मांसपिंड (क्लोमानम्) गले की नाड़ी (मतस्ने) हृदय के दोनों फेफड़ों और पित्त को नष्ट नहीं करता वैसे ही इन सबों की हिंसा तुम भी मत करो।

A learned person good profactor, maintains his body healthy by good foods and drinks. He does not allow the disease to overpower his body As a good physician he keeps his lungs, kidneys, liver and bile fit. He does positive and creative work and speaks truth from the heart. He never allows negative thoughts to get into his mind.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58